'ब्रह्म सत्यं जगत् स्फूर्तिः, जीवनं सत्यशोधनम्'

# विनोबा-प्रवचन

( सप्ताह में तीन बार—मंगल, गुरु और शनि को प्रकाशित )

वर्ष ३, अंक ४५ } वाराणसी, गुरुवार, १६ अप्रैल, १९५९ { पच्चीस रुपया वार्षिक


प्रार्थना-प्रवचन

बाँकानेर ( सूरत ) २६-९-'५९

## बिना सहयोगी जीवन के समाज-रचना असंतुलित होगी

[ इस भाषण का पूर्वांश अंक ४४ के पृ० ३२० पर प्रकाशित हुआ है। शेषांश यहाँ दिया जा रहा है। सं०]

आज हिंसा और स्पर्धा ने मिलकर मनुष्य के मन को विकृत बना दिया है। इन दोनों के कारण मानव विवश हो गया है। समाज के रक्षण का काम और समाज की रचना का काम हिंसा और स्पर्धा के चंगुल में फँस गया है। रक्षण देवी अर्थात् हिंसा और रचना देवी अर्थात् स्पर्धा। यों तो आपस की होड़ घर में भी भाई-भाई के बीच और दूसरे संबंधियों में भी थोड़ी बहुत चलती है। जब से कुटुम्बों में कानून का प्रवेश हुआ, तब से कुटुम्ब में स्नेह की जो कल्पना और भावना थी, वह ज्यादातर कल्पना ही होकर रह गयी। घर में स्नेह ही एक मात्र तत्त्व रहना चाहिए, किंतु जब माँ का हक, बाप का हक, भाई का हक, बहन का हक इत्यादि नाहक अधिकार घुस गये और उन्हें कानून का आधार मिल गया, तब भाई-भाई में जो स्नेह-ग्रन्थि की कल्पना थी, वह नहीं रही। पुराने ऋषियों को इस बात की दृष्टि थी। वे समझते थे कि घर में यदि कानून प्रवेश कर जायगा, तो स्नेह के बदले घर में काम-वासना प्रधान हो जायेगी और तब भाइयों में पारस्परिक प्रीति नहीं रहेगी। क्योंकि भाइयों के विवाह के बाद घर में विजातीय द्रव्य दाखिल हो जाता है और उससे झगड़े बढ़ते हैं। इसका प्रारंभ घर में पहले बहनों के बीच होता है और उसकी छूत भाइयों को भी लग जाती है। फिर भाई-भाई के लिए एक होकर रहना मुश्किल हो जाता है। ऐसी परिस्थिति में घर कलह और शंका के वातावरण से भर जाता है।

### मित्रभाव का वैशिष्ट्य

हमारे पूर्वजों को इसका भान था, इसलिए उन्होंने बंधु के लिए मित्र शब्द प्रयुक्त किया है। वेद में एक श्लोक है; "मित्रस्य मा चक्षुषा, सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्। मित्रस्य मा चक्षुषा, सर्वाणि भूतानि समीक्षे ।।" सर्व भूतमात्र मुझे मित्र दृष्टि से देखें और मैं सर्वभूतों को मित्र की दृष्टि से देखूँ। दुनिया और मेरे बीच मैत्री का संबंध रहे, ऐसी इच्छा वे करते थे। बंधु के संबंधों में वे बंधन देखते थे। बंधु और बंधन, दोनों शब्द एक ही धातु से निकले हैं, इसलिए बंधु कहलाने में कुछ न कुछ बंधन है, ऐसा उन्हें लगता रहता था। सुंद और उपसुंद नाम के दो भाई थे। दोनों शक्तिशाली थे और जैसे-जैसे उनकी शक्ति बढ़ती चली गयी, वैसे-वैसे ईश्वर का डर बढ़ता गया। अंत में ईश्वर ने उन्हें पराभूत करने के लिए तिल में से तिलोत्तमा नामक एक सुन्दर स्त्री उत्पन्न की और उसे उन दोनों भाइयों के पास भेज दिया। उसे देखते ही सुंद ने कहा कि ऐसी सुन्दर स्त्री के योग्य मैं हूँ। उपसुंद ने भी उसे देखकर कहा कि मैं इसके लायक हूँ। पांडव जैसे भाई होते, तो कोई न कोई उपाय निकाल लेते; किंतु यहाँ ऐसी बात नहीं बनी। अंत में वे झगड़ने लगे। दोनों गदाधारी थे। दोनों की गदाएँ एक-दूसरे के सिर पर पड़ीं। सुंद की गदा, उपसुंद के सिर पर और उपसुंद की गदा सुंद के सिर पर। एक ही क्षण में दोनों व्यक्ति धूल में मिल गये। गणपति महाराज यह दृश्य देख रहे थे। वे इसे देखकर इतने अधिक हँसे कि उनका पेट मोटा होने के कारण दुखने लगा। वेद में इसका वर्णन है। इसलिए भाइयों के बीच की स्पर्धा को स्पष्ट करने के लिए शत्रु का पर्यायवाची शब्द सापत्न दिया गया है। सापत्न ही शत्रुत्व है। एक ही माँ-बाप से उत्पन्न भाई अथवा एक पिता और दो माताओं से उत्पन्न लड़के-बच्चे एक-दूसरे के विरोध में सापत्न कहे गये। हिंदू और मुसलमानों में नहीं पटती, उसका भी यही कारण है कि वे, भाई-भाई हैं। दक्षिण-कोरिया और उत्तर-कोरिया दोनों भाई-भाई हैं और उनका परस्पर विरोध है। हमें या तो भाई से डरना चाहिए या शत्रु से डरना चाहिए। इसीलिए शास्त्रकारों ने बन्धु शब्द छोड़कर मित्र शब्द का उपयोग पसन्द किया। मैत्री में अधिकार का भाव नहीं रहता। वहाँ केवल प्रेम ही प्रेम रहता है। जब कि बंधुत्व में अधिकार की बात भी होती है। जहाँ अधिकार आ गया, वहाँ स्नेह खंडित हो जाता है।

### अज्येष्ठाः अकनिष्ठाः

वेद में भाई-भाई किस तरह रहते थे। इसका भी वर्णन है, "अज्येष्ठाः अकनिष्ठाः।" जितने भाई हैं, उनमें न कोई ज्येष्ठ है, न कोई कनिष्ठ है। अर्थात् भाइयों में बड़े-छोटे का सम्बन्ध न होकर मित्रों का सा सम्बन्ध होना चाहिए। इसलिए कह सकते

हैं कि मैत्री सर्वोत्तम संबंध है और वही समाज-रचना का आधार है। मित्र एक-दूसरे से स्पर्धा नहीं करते और जब एक मित्र दूसरे की मदद करता है, तो दूसरा उसके प्रति आभारी हो जाता है। जब कि सम्बन्धी हमेशा अपने-अपने हक्कों के लिए जूझते हैं और अपने ऊपर किये गये उपकारों की गिनती कभी नहीं करते। पत्नी जीवनभर पति की सेवा करती है, उसे पति याद नहीं रखता। यदि एक दिन भी पत्नी ने पति की आज्ञा नहीं मानी, तो वह उसे जीवनभर याद रखता है। जीवनभर उसने सेवा की, इसके बारे में वह कहता है, इसमें क्या नयी बात हुई ? वह मेरी पत्नी है और यह उसका धर्म है। मित्रों के संबंध में इससे उल्टी बात है। किसी भी तरह के कर्त्तव्य की जिम्मेदारी से बरी रह कर जब जरूरत पड़े, वह मदद करता है और उसकी वह सेवा जिन्दगीभर याद रहती है। जब कि पत्नी से जो असेवा हुई, वह जिन्दगीभर याद रहती है। इसलिए हमारे पूर्वजों ने अधिकारों से ऊपर उठकर जीवन-दर्शन को समझाने के लिए एक अच्छी बात कही है कि सोलह वर्ष की उम्र प्राप्त होने पर पुत्र पुत्र नहीं रहता, बल्कि मित्र हो जाता है। सोलह वर्ष तक पिता ने उसका लालन-पालन करके उसे बड़ा किया। इसके बाद पुत्र को जीवन में पिता की सलाह की जरूरत पड़े, तब उसे सलाह दे और नित्य सलाह की जरूरत न पड़े, इसलिए वैसा योग्य शिक्षण सोलह वर्ष की उम्र तक हो जाय।

अयोध्यापति दशरथ के पास आकर जब विश्वामित्र ने कहा कि मुझे यज्ञ-रक्षण के लिए राम-लक्ष्मण चाहिए, तो दशरथ ने कहा कि मैं इसमें क्या कर सकता हूँ। विश्वामित्र ने पूछा कि इसमें क्या अड़चन है ? दशरथ ने जवाब दिया कि अभी रामचन्द्र ने सोलह वर्ष पूरे नहीं किये हैं। यदि उसने सोलह वर्ष पूरे कर लिये होते, तो वह मेरा मित्र हो गया होता, ऐसी राजा दशरथ ने दलील की। कहने का भावार्थ यह है कि सोलह वर्ष की अवस्था तक पुत्र में आत्म-रक्षण की शक्ति आ जानी चाहिए। आत्म-रक्षण की शक्ति एक मात्र मैत्री के आधार पर विकसित हो सकती है। घर की कामना (भावना) शक्ति घर के आंगन में भरे हुए प्रेम के पानी का हौज है। यदि पानी बहता हुआ न रहे, तो उसमें कीटाणु पड़ जाते हैं। इसी तरह अति आसक्ति के कारण घर का प्रेम कामरूप हो जाता है। स्नेह मिट जाता है और उसे कामासक्ति का रूप प्राप्त हो जाता है।

## सोचने का गलत ढंग

घर में एक-दूसरे के साथ प्रेम और बाहर पड़ोसी के साथ संबंध बनता है स्पर्धा का। पड़ोसी बेचारा गरीब हुआ, तो कहा कहा जाता है कि इसने पुरुषार्थ कम किया है, इसलिए यह कम कमाता है, कम खाता है। यदि इसे अधिक खाने की हविस हो, अधिक कमाने की इच्छा हो, तो अधिक पुरुषार्थ भी करना चाहिए। किसी का घर जल जाय, तो कहा जाता है कि पूर्व जन्म के पाप का फल मिला होगा अथवा इस जन्म में इसने काफी पुण्य नहीं कमाया होगा। सोचने का यह कैसा विचित्र ढंग है। भाग्यवाद ने हमारे समाज को निष्ठुर और निर्दय बना दिया है। परिणाम यह हुआ है कि एक ही समाज में रहते हुए हम एक-दूसरे की चिंता नहीं करते।

## वासनामुक्त सहभोग सहयोग है !

गाँव में सर्व सामान्य सहयोग नहीं है, सहभोग भी नहीं है। सारे भोगों के लिए सहयोग सर्वश्रेष्ठ है। वही भोग मान्य होते हैं, जिन्हें सहयोग का रूप प्राप्त हो जाता है। भोग अनिवार्य है और वह भी पुण्य और पावन हो सकता है, यदि उसे सहभोग का रूप प्राप्त हो जाय। मेरे साथ तुम भोगो, तुम्हारे साथ मैं भोगूँ। अकेले-अकेले भोग करनेवालों को दरवाजे बंद करके भोजन करना पड़ता है; क्योंकि दूसरे की नजर लगने का डर रहता है। माँ की नजर कभी बच्चे को नहीं लगती। उपनिषद् में कहा है, "अन्नं अस्ति साधारणम्"—अन्न सबके लिए समान है। याने अन्न पर सबको समान अधिकार है। इसलिए जो बिना मेहनत किये खाते है, उनके बारे में कहा गया है कि वे पाप रांधकर खाते हैं। भाष्यकारों ने भाष्य करते हुए कहा है कि जिस दाने के ऊपर दूसरे की वासना लगी हुई हो, वह खाने योग्य नहीं है। इसलिए दूसरे की वासना का उपयोग करके भोग नहीं करना चाहिए।

अभी अभी हमारी सरकार ने एक नया कर निकाला है-डेथ ड्यूटी। 'मृत्युकर' ऐसा नाम इसे दिया गया। पहले जमाने के लोगों को यह खयाल नहीं था कि मरे हुए लोगों के सिर पर भी कर लगाया जा सकता है। इस मृत्युकर का परिणाम क्या हुआ ? यदि कोई बड़ा मालदार खूब कंजूस हो, तो 'जुग-जुग जीयो मेरे मित्र !' ऐसा कहने के बदले उसके मरण की वासना और वांछा उसके सगे-सम्बन्धियों में उत्पन्न हो जाती है, यह कैसा भयंकर विचार है कि समाज में किसी व्यक्ति के मरण की वासना उत्पन्न हो ! उसके पास जो कुछ है, वह सब समाज का ही है, फिर मृत्युकर की जरूरत ही किस लिए होनी चाहिए ?

भगवान ने दो हाथ दिये हैं। दोनों हाथों से यदि सेवा करना निश्चय कर लें, तो समाज में सम्यक् परिवर्तन हो सकता है। आज वैसा नहीं होता है, इसलिए दया का रूप नहीं निखर रहा है। जैसे कोई बीमार पड़े, तो उसकी दवा की व्यवस्था करते हैं, अस्पताल खोलते हैं, किन्तु जिस कारण से बीमारी हुई है, उस पर किसी का ध्यान नहीं जाता। कारण को जैसा का तैसा रखकर बीमार को दवा देने का काम चलता रहता है। यह करुणा नहीं है। अनेक तीव्र कर्म करने की प्रेरणा यदि मिले, तो समझो करुणा है। लड़के को बिच्छू ने काट लिया, वह रोता है और दुखी होता है। उसके माता-पिता उसके लिए दुखी होते हैं कि हम इसकी कोई मदद नहीं कर पा रहे हैं, इसका दुख दूर नहीं कर पा रहे हैं। फिर भी उसके लिए कितनी तरह की दौड़-धूप करते हैं। कुछ न कुछ किये बिना रह नहीं पाते। समाज में स्पर्धा के बदले करुणा पैदा हो जाय, तो समाज सुखी हो सकता है।

## सहयोग और निःसैन्यीकरण

दूसरी बात रक्षण की है। हम सदा मानते आये हैं कि रक्षण के लिए भी शस्त्र चाहिए। इसके लिए प्रेम बेकार है। हिन्दुस्तान वर्ष में तीन सौ करोड़ रुपया सैन्य पर खर्च करता है और दो सौ करोड़ रुपया कारबार पर खर्च करता है और सौ करोड़ रुपया अनाज खरीदने पर खर्च करता है। जब तक तीन सौ करोड़ रुपये सैन्य पर खर्च हो रहे हैं, तब तक गरीबों की सेवा और उनका उद्धार किस प्रकार हो सकता है ? यह बड़ी शोचनीय परिस्थिति है। इसके बारे में जितना सोचता हूँ, उतना ही हृदय व्यथित हो जाता है। स्वराज्य आया, तो होना यह चाहिए कि हम अनेक प्रकार से पुरुषार्थ करें। स्वराज्य के बाद उन्नति कर

सकें और अवनति भी कर सकें—दोनों करने की शक्ति आ जाय, तभी स्वराज्य कहा जायगा। यदि स्वराज्य के बाद हमें उन्नत होना है, संसार को कोई रास्ता बताना है, तो हमें सेना के रक्षण से मुक्त होना पड़ेगा। मैं यह मानता हूँ कि यह बात सुनते ही कई लोग घबरा जाते हैं। किन्तु यह घबराने की बात नहीं है। क्षण-भर के लिए एक बार गम्भीरतापूर्वक सोचने की बात है कि आज पाकिस्तान के डर से हिन्दुस्तान तीन सौ करोड़ रुपया खर्च करता है और पाकिस्तान हिन्दुस्तान के डर से सौ करोड़ रुपया खर्च करता है। हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के आने-जाने, मिलने-जुलने, लेन-देन के जो संबंध हैं, ऐसा नहीं है कि वे छोड़े जा सकें। ऐसी परिस्थिति में हम चार सौ करोड़ रुपया एक-दूसरे के भयखाते खर्चें, तो कैसे काम चलेगा? यदि इससे छुटकारा पाना हो, तो क्या करना चाहिए, इसके बारे में दो बातें करें। एक तो समाज-रचना बजाय स्पर्धा के सहयोग और सहभोग पर आधारित हो और दूसरे ऐसा कुछ किया जाय कि समाज के रक्षण के लिए सेना की जरूरत न पड़े।

## योग को सहयोग में बदलिए

हमारी साधना, हिन्दुस्तान की पारमार्थिक साधना इतनी एकांगी है कि एकान्त में जाकर ध्यान-धारणा करो, तभी योग सधता है। सहयोग तो इसमें है ही नहीं। सब मिलकर एकत्र भजन करें, नाचें-गायें, ऐसा पहले तो था ही नहीं। बाद में भक्तों ने शुरू किया। सब मिलकर भगवान का भजन करते, नाचते-गाते। इस प्रकार उन्होंने सहयोग की साधना शुरू की। भगवान ने गीता में कहा है:

> नाहं वसामि वैकुंठे योगिनां हृदये अपि।
> मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।

योगियों के हृदय में मैं रहूँ या न रहूँ, वैकुण्ठ में भी रहूँ या न रहूँ, किंतु जहाँ सारे भक्त एकत्र होकर भजन करते हैं, वहाँ मैं रहता हूँ। भक्ति में जो एकांगीभाव आ गया, उसके निराकरण का आरंभ-मात्र हमारे देश में हुआ था; किंतु सहभोग का आरम्भ नहीं हुआ। सब मिलकर समान भोग कर सकते हैं, यह वे जानते भी नहीं थे। मैं साढ़े सात वर्षों से घूम रहा हूँ। बहुत से लोग मुझसे कहते हैं कि आपकी त्याग की बातें हमको कठिन लगती हैं। मैं उनसे कहता हूँ कि त्याग से तनिक भी डरने की जरूरत नहीं है।

## समाज को घर बनायें!

आपको अपने बच्चों की सेवा के लिए, माता-पिता की सेवा के लिए, मेहमान के लिए रात को जागना पड़ता है। क्या यह त्याग नहीं है? परन्तु इस त्याग में आप सुख मानते हैं। इस त्याग करनेवाले को ऐसा त्याग करने का मौका न मिले, तो वह दुखी हो जाता है। आप जो त्याग घर में करते हैं, वह मैं समाज में करने को कहता हूँ। प्रयोगशाला में विभिन्न प्रमाणों में एक प्रयोग करके देखा और वह सफल हो गया, तो व्यापक क्षेत्र में उसका उपयोग करना—यही विज्ञान की प्रक्रिया है। पहले छोटे क्षेत्र में प्रयोग, फिर उसका बड़े क्षेत्र में प्रसार। कौटुम्बिक क्षेत्र में अन्य लोगों ने त्याग के कितने प्रयोग किये हैं, यह आप सब जानते हैं। कुटुम्ब में आप त्याग करके क्या आनन्द के सिवाय कोई दूसरा अनुभव भी करते हैं? कुटुम्ब में त्याग है, स्पर्धा नहीं। इसलिए आनन्द होता है। इसलिए मैं कहता हूँ कि आपने प्रयोगशाला में जिस प्रयोग को सफल करके दिखाया है, अब उसका प्रयोग गाँव में कीजिये। प्रत्येक घर में एक-दूसरे के लिए त्याग किया गया, तो इसमें यशलाभ ही हुआ। इससे आप किस निर्णय पर पहुँचे? वह मीठा लगा कि कड़ुआ? 'कड़वो लीमणो घोळमा रे।' परन्तु त्याग कड़ुआ नहीं लगता, यह मीठा ही लगता है। यह अनुभव की बात है। मैं यही प्रयोग सारे गाँव में फैलाने को कहता हूँ। मैं आप सबसे कोई त्याग करने को नहीं कहता। मैं आप से अपना घर छोड़ कर चले जाने को नहीं कहता। वनवासी बनने या सन्यासी होने के लिए भी नहीं कहता। मैं आपसे केवल सहभोग करने को कहता हूँ। आपने घर में सहभोग किया और उससे आपको आनन्द हुआ, तो अब उसे व्यापक बनाइये। ग्रामदान में इससे अधिक कुछ नहीं है।

## ग्रामदान की व्यवस्था कैसी होगी?

बहुत लोग परेशान होते हैं कि ग्रामदान में व्यवस्था किस प्रकार की होगी। मैं कहता हूँ कि तुम जैसी कहोगे, वैसी होगी! गाँव की जमीन सारे गाँव की हो जाय या अलग की अलग रखी जाय, यह सब तो आपको ही तय करना है। जहाँ सहभोग की कसम ली, वहीं आपको सूझने लगेगा कि किस बात का उत्तम से उत्तम उपयोग किस तरह हो सकता है। आप व्यवहार-कुशल लोग हैं, क्या इतना नहीं कर सकेंगे? यदि आप इतना कर लें, तो गाँव-गाँव में राज्य चलाने योग्य लोग तैयार हो जायेंगे। ग्रामदान के बाद गाँव का कारोबार किस तरह चलाया जाय, इसका आप सबको अनुभव होगा। आप अपने गाँव में उत्पादन बढ़ायेंगे, तो नंदाजी उसे देखने आयेंगे कि आपने उत्पादन के सवाल को किस प्रकार सुलझाया है। उन्हें आपसे मार्गदर्शन मिलेगा और वे उसी के मुताबिक काम करेंगे। तब जो कुछ दिल्लीवालों को नहीं सूझेगा, वह आपको सूझेगा; क्योंकि आप छोटे प्रमाण में विचार करेंगे। आपके गाँव में तरह-तरह के तत्त्वज्ञानी भी तैयार होंगे, किंतु आप ऐसा नहीं करते हैं। और 'मेरा घर, मेरा घर' करके बैठे रहते हैं। सारे गाँव का सवाल मेरा सवाल है। जब ऐसा होगा, तब आदर्श गाँव बनेगा। इसके बाद अगर कोई मार्ग-दर्शन माँगे, तो वह उसी प्रकार दिया जा सकेगा, जिस प्रकार एक छोटा त्रिकोण लेकर एक सिद्धांत सिद्ध हो जाने पर बड़े त्रिकोण पर भी वह सिद्ध हो जाता है। ब्लैक बोर्ड पर त्रिकोण का सिद्धांत सिद्ध हुआ, इससे मुझे क्या? मैं कहता हूँ कि अरे भले आदमियो! तुम्हारा यह हल आगे चल कर समाज के लिए, देश के लिए और विश्व के लिए उपयोगी सिद्ध करो।

---

## कल्याणम्

एक था राक्षस। वह अकेला रहता था। एक दिन वह बाजार में गया। वहाँ उसने आम खरीदे। पके-मीठे आम खाकर बड़ा प्रसन्न हुआ और फिर लौटकर घर आ गया।

कुछ समय बाद। उसकी शादी हो गयी। बाल-बच्चे भी हो गये। एक दिन वह फिर बाजार गया। आम खरीदे, पर इस बार वह स्वयं वहाँ न खा सका। आमों को घर ले आया। बच्चों को दिया। बच्चों ने वे आम बड़ी मस्ती से खाये। उसे उसी में समाधान हो गया।

पहले वह अकेला था, किंतु घर में खानेवाले बढ़ गये, तो शादी से क्या लाभ हुआ? दूसरे की चिन्ता करने का अभ्यास हुआ। इसीलिए शादी को 'कल्याणम्' कहते हैं।

राजस्थान से बिदाई के समारोह में

सूरजगढ़ (राज०) ३१-३-'५९

## आन्दोलन के तीन आकर्षण :

# आध्यात्मिक मूल्य, जमाने की माँग और हृदयशुद्धि

कभी मैं अपनी इस यात्रा के विषय में सोचता हूँ, तो अद्‌भुत ही दर्शन होता है। इसकी खास बात तो यह है कि इसमें कभी धर्मभेद की बाधा नहीं हुई। हिन्दुओं ने कहा कि 'यह हमारी संस्कृति का विचार है।' बौद्धों ने कहा कि 'बाबा उसी राह पर चल रहा है, जिस पर गौतम बुद्ध चले थे।' केरल और मालाबार के चारों चर्चों ने भी यही जाहिर किया कि 'यह ईसा की ही सिखावन है, जो बाबा के इस काम में प्रकट हो रही है।' मुसलमानों ने कहा कि 'जमीन सबकी है, वही एक उसका मालिक है और सभी जमीन पर सभीका हक है—यह इस्लाम का एक बुनियादी उसूल है और बाबा उसीका प्रचारक है।' उस रोज अजमेर में मास्टर तारासिंह ने भी यही कहा था कि 'बाँटकर खाने की बात सिख गुरुओं ने की थी और वही बात बाबा के काम में है।' हिन्दुस्तान में विभिन्न प्रान्त हैं और उनकी भाषाएँ भिन्न-भिन्न हैं। लेकिन सभी भाषावालों ने इसका समान स्वागत किया। जैसा स्वागत गुजरात ने किया, बिहार ने किया, वैसा ही तमिलनाड, आंध्र और कन्नडवालों ने भी किया। जैसा स्वागत उडीसावालों ने किया, वैसा ही बंगाल ने किया। जैसा केरल ने किया, वैसा ही महाराष्ट्र ने भी किया। इसमें मैंने कभी किसी तरह का फरक नहीं देखा।

## सर्वत्र समान स्वागत क्यों ?

अभी आपने सुनाया कि ढाई महीने में कुल १६ हजार का साहित्य बिका। मैं हिसाब लगाता हूँ, तो करीब-करीब यही पैमाना तमिलनाड और केरल में भी आया। सबने साहित्य का स्वागत भी समान रूप से किया। जहाँ-जहाँ मैं गया, किसीने यह महसूस नहीं किया कि यह अपने प्रान्त से बाहर का शख्स है। सबने यही महसूस किया कि यह अपना ही है। कांग्रेस के शासन में जितना स्वागत हुआ, उतना ही केरल के कम्युनिस्ट शासन में भी। कुछ लोगों ने यह आशंका प्रकट की थी कि बाबा केरल में जा रहे हैं, तो वहाँ किस तरह स्वागत होगा ? लेकिन देखा गया कि कम्युनिस्टों ने स्वागत किया और जनता के ओर से भी स्वागत हुआ। यह क्या बात है ? इस तरह इस काम में पक्षभेद, मतभेद, भाषाभेद, प्रान्तभेद, इन सारे भेदों ने किसी तरह का विघ्न उपस्थित नहीं किया। इतना ही नहीं, सबने भक्ति के साथ इसका समान स्वागत किया और लोगों में इस काम की रुचि बढ़ रही है। संगीत के जलसे में, कला या साहित्य के काम में किसी तरह के पक्षभेद का सवाल न उठना और उनका समान स्वागत होना कोई आश्चर्य की बात नहीं। किन्तु यह तो देश का एक अहं सवाल है, जिसमें आर्थिक और राजनैतिक सवाल भी पड़े हुए हैं। यह एक ऐसा पेंचीदा मसला है, जिसमें नैतिक मूल्यों के परिवर्तन का सवाल आता है, जिससे सामाजिक क्रांति भी होनेवाली है। ऐसे एक विवादास्पद मसले को लेकर एक शख्स ८ साल घूम रहा है, फिर भी उसका इतना स्वागत हो रहा है, यह अवश्य आश्चर्य की बात है। किन्तु इसका कारण यही है कि चाहे कितना ही मतभेद क्यों न हो, लेकिन एक बुनियाद के तौर पर यह काम हो रहा है, जिसमें गाँव के एक कुटुंब बनाने की बात है। यह एक नया विचार है, इसीलिए इस विचार का सब जगह स्वागत हुआ।

## बड़े देश में छोटा दिल कैसे चलेगा ?

मेरा मन कभी-कभी इस पर सोचता है कि क्या यूरोप में भी कोई शख्स इस तरह राजनैतिक और आर्थिक मसला लेकर स्पेन से रूस जा पाता और हर देश में हर पक्ष और हर भाषा ने उसका बिना राष्ट्रभेद के ऐसा स्वागत किया होता ? क्या ऐसे बुनियादी कार्य का स्वागत वहाँ होता ? यह अलग बात है कि राज्य की ओर से कोई वहाँ जाता है, तो स्वयं वहाँ की राज्य-सरकार और जनता दोनों उसका स्वागत करते हैं। लेकिन वहाँ पक्षभेद और भाषाभेद ऐसे हैं कि वे कल्पना ही नहीं कर सकते कि हिंदुस्तान में विविध भाषाएँ एक साथ रहती हों। इसलिए जब कभी ऐसा सोचता हूँ, तो भारत के विशाल वैभव की कल्पना आती है और रवीन्द्रनाथ ने इसे "भुवन-मन-मोहिनी" क्यों कहा, इसका भान होता है। इतना बड़ा देश, जिसमें इतनी विविध भाषाएँ, अनेक धर्मभेद, विचारभेद मौजूद हैं, दुनिया में अद्वितीय है। कितनी बड़ी विरासत हमें मिली है। इसीलिए मैं तब विशेष दुःखी होता हूँ, जब अपने ऐसे देश में छोटे-छोटे झगड़े देखता हूँ। बड़ा देश और छोटे दिल, आखिर कैसे मेल खायेगा ?

ऋग्वेद में एक अघमर्षण सूक्त आता है, जिसके पठन से सब पापों का निवारण होता है। वैसे भिन्न-भिन्न पाप के निवारण के लिए भिन्न-भिन्न ग्रन्थ का पाठ बताया गया है, लेकिन ऋग्वेद में एक अघमर्षण सूक्त के पठन से ही सब पापों से मुक्ति बतायी है। फिर भी मैंने देखा कि उस सूक्त में न पाप का जिक्र है, न पुण्य का। पाप और पुण्य का नाम तक नहीं है। इतना ही कहा गया है कि परमेश्वर ने एक सृष्टि रची है और उसके मूल में ऋत और सत्य, दिवस और रात्रि, स्वर्ग और समुद्र, नक्षत्र, सूर्य और चन्द्र थे। इसका वर्णन सिर्फ तीन मन्त्रों में किया गया है। पाप-निवारण के साथ इनका क्या संबंध है, यह जब मैं सोचने लगा, तो यह रहस्य समझ में आया कि 'परमेश्वर ने अनंत सृष्टि का निर्माण किया है, उसमें उसका खयाल करें, तो ध्यान में आता है कि कहाँ सूर्य, कहाँ चन्द्र, कहाँ अनंत तारकाएँ और कहाँ हमारा क्षुद्र मन।' जब मनुष्य के मन में ऐसी कल्पना आयेगी, तो फिर पाप टिक ही नहीं सकता, क्योंकि इसके खयाल से दिल विशाल बनता है। 'एस्ट्रॉनामी' का अध्ययन करनेवाले छोटे दिल के नहीं बन सकते। गणित और पदार्थ-विज्ञान का अध्ययन करनेवाला या सृष्टितत्त्व और आत्मा की खोज करनेवाला छोटे दिल का बन नहीं सकता। यह कहने की जरूरत नहीं है। परमेश्वर की सृष्टि की अनंतता और विशालता का खयाल करें, तो निश्चय ही पाप भाग जायगा।

इसी भव्यता का मैं स्मरण करता हूँ, तो मेरे दिमाग में कोई पाप नहीं आ सकता है। मेरे हाथ से कोई पाप नहीं बन सकता। मैं कोई ज्ञानी नहीं, लेकिन मुझे खयाल है कि हमारे देश में कितना गहरा और विशाल साहित्य है। १४-१५ भाषाएँ हैं। हर भाषा में चालीस-पचास ऋषि हैं। कितना विशाल दृश्य है ! राजस्थान में आया तो, राणाप्रताप की याद आयी। मीरा की याद आयी। स्वामी दादू की याद आयी। बिहार में गया, तो बुद्ध और महा-

वीर, जनक महाराज और जानकी सतत पदयात्रा में रहे। उत्तर प्रदेश में गया, तो रामकृष्ण, तुलसी और कबीर याद आये। अब मैं कल जानेवाला हूँ पंजाब, तो नानक अर्जुन, गुरु गोविन्द और रामतीर्थ याद आये। बंगाल में २५ दिनों की ही यात्रा पूरी हुई, फिर भी चैतन्य, रामकृष्ण, विवेकानन्द, रविन्द्र श्री अरविन्द सभी याद आ गये। कहाँ तक अनेक प्रान्त का नाम लूँ। भारत की यह विशालता और यह एकता ही दुनिया को भारत की सबसे बड़ी देन है। इतना जिसे प्रतिक्षण अनुभव होता है, उसे यह सुनकर कितनी तकलीफ होती होगी कि यहाँ छोटे-छोटे झगड़े होते हैं! इसका आप खयाल कर सकते हैं।

## एकमात्र एकता की ही जरूरत

हिन्दुस्तान को एकता के सिवा और किसी चीज की जरूरत नहीं है। बाकी की चीजें पहले से ही पड़ी हैं। एकता भी यहाँ पड़ी है, वह मौजूद है, लेकिन उसकी याद हमें नहीं रहती। ज्ञानपूर्वक, भक्तिपूर्वक, उद्योगपूर्वक चली आयी विशाल और व्यापक सभ्यता और संस्कृति का खयाल मन में रहे, तो यह क्षुद्र मन कभी टिक नहीं सकता। वह निष्पाप बनेगा। जैसे अघमर्षण सूक्त से पाप का निवारण होता है, वैसे ही मेरे लिए भारत की विशालता का खयाल है। जिसके कारण क्षुद्र मन नहीं टिक पाता है। अगर राजस्थान के नेता, सेवक, अनुयायी और कार्यकर्ता सबके दिल एक हो जायँ, तो मैंने सब कुछ भर-भरकर पाया।

## दिमाग अनेक हों, पर दिल एक रहे

आपसे मैं यही कहना चाहता हूँ कि ग्रामदान-भूदान का यह आन्दोलन अपने देश के लिए वरदान समझिये। इस प्लेटफार्म पर सभी प्रकार के विचार-भेदों की समाप्ति होती है। उसके लिए मौका मिल सकता है। हमारा देश बड़ा है, उसके बड़े मसले हैं। इसलिए कुछ मतभेद होना लाजिमी है, जरूरी है और लाभदायी भी है। उनका हल भी निकल सकता है और तुरन्त नहीं भी निकल सकता। लेकिन अगर दिल की एकता हो, तो हर हालत में अगर हम यह महसूस कर सकते हैं कि भारत की इस हालत में यह विचार-भेद की विविधता और समृद्धि का लक्षण हो सकता है। मैंने गीता के विश्वरूप दर्शन का कोई सात-आठ महीने मौनपूर्वक चिन्तन किया। उस समय एक चीज मेरे ध्यान में आयी, जो किसी भाष्यकार या टीकाकार के ध्यान में नहीं आयी। मैंने किसी भी टीका में यह नहीं देखा कि विश्वरूप दर्शन में सहस्र हाथ, सहस्र पाँव, सहस्र मुख, सहस्र नेत्र, सहस्र श्रोत्र, सब कुछ सहस्र बनाया है, लेकिन दिल एक ही है। ऐसा चित्र नहीं बनाया, जिसमें दिल अनेक हैं और दिमाग भी अनेक। विचार-भेद मस्तक में रहते हैं। भगवान विश्वरूप हैं, लेकिन दिल एक ही है। यह नयी चीज ध्यान में आयी, तो मुझे ऐसा आनन्द हुआ, जैसा कि वनस्पितियों से भरा कोई बगीचा देखने से होता है। मुझे लगा कि आज गीता का एकादश अध्याय खुल गया। दिल एक है। समग्र विश्व का दिल एक है, दिमाग एक नहीं। उनका उपयोग अच्छा हो सकता है। लेकिन दिल एक ही होना चाहिए। नहीं तो दिमागों की विपुलता और विविधता एक-दूसरे से टकरायेगी। इसलिए स्पर्धा की भावना नहीं होनी चाहिए और हमारा दिल एक हो जाना चाहिए। यही एक मेरी वासना है हमारे सब साथियों और सेवकों से लिए। चाहे वे किसी पक्ष के हों, मेरे लिए सब एक ही हैं। भारतवासी के नाते, मानवता के नाते, भगवान के रूप के नाते, सब मेरे लिए समान हैं—एक हैं।

## यह जमाने की प्रबलतम माँग

विचार के फलस्वरूप मुझे यह भी मालूम हुआ कि यह जमाने की माँग है, एक नैतिक विचार है और है हृदयशुद्धि का काम। अगर ये तीनों बातें जुड़ जायँ, तो यह चीज हरएक को छूयेगी। इस यात्रा की बुनियाद में काल-पुरुष की माँग, जमाने की माँग अत्यन्त स्पष्ट है। मैं नहीं मानता कि इतनी स्पष्ट माँग और किसी काम में हुई है।

आज ही एक भाई ने कहा कि 'व्यक्ति का समाज में लोप करने के साथ-साथ व्यक्ति ज्यों ही समाज के साथ एकरूप होगा, त्यों ही उसका अत्यन्त विकास होगा। रूस और अमेरिका में जो उत्पादन बढ़ा है, वह अगर दुनिया में बँट जाय, तो काफी मसले हल हो जायें। लेकिन वह बँटता नहीं है। हमारे देश में भी बँटता नहीं है। फिर भी दुनिया में उत्पादन बढ़ाने की आवश्यकता मानी जाती है। लेकिन वह आवश्यकता उतनी प्रबल नहीं है, जितनी कि भगवान द्वारा निर्मित जमीन की मालकियत न रखने की आवश्यकता प्रबल है। इसलिए इस काम में जमाने की माँग स्पष्ट है।

## नैतिक उत्थान की बात पहले से ही स्पष्ट

इस काम का तरीका नैतिक उत्थान और आध्यात्मिक मूल्यों की स्थापना का है। जिसमें आध्यात्मिक मूल्यों की स्थापना होती है, वह सबके हृदय को स्पर्श करता है। छोटे-छोटे ग्रन्थ दुनिया में नहीं टिकते। बाइबिल, कुरान, वेद, उपनिषद् धम्मपद इसीलिए टिकते हैं कि वे सब मनुष्यों को, सब कालों और सब देशों में छूते हैं। उनमें एकमात्र अध्यात्म-विचार ही मुख्य विचार है, इसीलिए वे टिके हैं। इसी प्रकार इस मिशन के मूल में भी मजबूत आध्यात्मिक विचार पड़े हैं, इसलिए यह सबको छूता है। बात सब लोग पहले से ही समझे हुए थे, इसलिए इसे आरम्भ से ही इतनी सहानुभूति हासिल हुई। यह जमाने की माँग है, यह समझने में जरा देरी लगी। आरम्भ में वह स्पष्ट नहीं था, पर धीरे-धीरे ध्यान में आया। नागपुर कांग्रेस का प्रस्ताव आदि सब इसका निदर्शक है।

इसमें हृदयशुद्धि की भी बात है। यह बात भी पहले ध्यान में नहीं आयी थी। जिसने इस कार्य का आरम्भ किया है और जिन्होंने इसमें काम किया है, उनके मत में शुद्धि का भाव है—इसका थोड़ा-थोड़ा भाव अभी होने लगा है। इसमें हमारी कमी है। हमारा कार्य आध्यात्मिक बुनियाद पर खड़ा है। यह जितना स्पष्ट है, उतना हमारी हृदय-शुद्धि की बात उसमें है, यह स्पष्ट नहीं है। अगर ये तीनों बातें स्पष्ट होतीं, तो इस कार्य को संपन्न होने में एक दिन की भी देरी न लगती। इसलिए यह कमी है। हृदयशुद्धि को कोई कबूल न करे, यह सम्भव नहीं है। सूर्य नारायण को अंधा भी कबूल करता है। प्रकाश के रूप में नहीं, पर गर्मी के रुप में। ज्ञानी उसे प्रकाश के और गरमी के रुप में भी पहचानता है। इसी तरह जहाँ हृदयशुद्धि हो जाती है, वहाँ सबको उसका भास होता है, स्पर्श होता है। लोगों को इसकी अनुभूति नहीं होती, इसमें दोष हमारा ही है, लोगों का नहीं।

## हृदयशुद्धि के लिए प्रयत्नशील हों

इस तरह इस काम में ये जो तीन विचार हैं, उनमें पहला विचार स्पष्ट है। याने इसमें आध्यात्मिक मूल्य है, यह सर्वथा स्पष्ट है। दूसरा विचार कि यह जमाने की माँग है, काफी स्पष्ट है। तीसरा

हृदयशुद्धि का विचार अत्यंत अस्पष्ट है। कुछ थोड़े लोगों को भास हो रहा है कि इसके विचारक, प्रचारक करुणा रखते हैं। मुझ पर लोगों की यह कृपा है कि मेरे साथियों को अलग कर वे मेरे गुण गाते हैं। लेकिन वे भूल करते हैं। साथियों में जो दोष हैं, वे मुझमें भी हैं। मुझमें अगर वे न होते, तो उनमें भी नहीं आते। जानकी देवी ने अभी आशीर्वाद के तौर पर कहा कि "यह भक्त हृदय है, आसपास के दुःखों और पापों का यह खयाल करेगा, तो उसका शरीर टूटेगा, तो भी भगवान इसका रक्षण करेगा।" भगवान सचमुच रक्षण करता है, अगर इतना भक्त हृदय हो। लेकिन अभी काफी अशुद्धि है। अगर हमारा हृदय इतना शुद्ध हो जाय, तो भगवान रक्षण करने के लिए तत्पर ही बैठा है। कौन नहीं चाहता कि भगवान की कृपा हो, लेकिन उसके लिए उतनी हृदयशुद्धि भी तो होनी चाहिए। आंदोलन के ये ही तीन आकर्षण हैं। इन पर आप सभी सोचिये। हमारे कार्यकर्ताओं की हृदयशुद्धि होनी चाहिए।

### दुबारा आने के बारे में

अब यहाँ दुबारा आने की बात! कौन नहीं चाहेगा कि आप जैसे प्रेमियों के दुबारा दर्शन न हों? लेकिन जैसे मैंने अभी कहा कि मुझे यहाँ मीरा खींचेगी, तो वहाँ नानक खींचेगा। खयाल आता है कि एकबार पूरे भारत की यात्रा कर लूँ। विचार किया है कि यहाँ का कुछ प्रदेश छूटा है, उसे दुबारा लिया जाय। लेकिन हर प्रान्त का हर भाग लेना ही चाहिए, यह जरूरी नहीं। अखिल भारत की आवश्यकता देखकर जैसा सोचा जायगा, वैसा करना ही अच्छा होगा। उसमें अगर यहाँ आना हुआ, तो अच्छा ही है और नहीं हुआ, तो भी अच्छा है। लेकिन आप लोगों को मैं ऐसी आशा देना नहीं चाहता हूँ कि हमारा यहाँ दुबारा आना होगा ही। सबकी सलाह से जैसा सोचा जायगा, वैसा होगा।

आज मेरे ध्यान में यह बात विशेष स्पष्ट रूप से आयी कि यह सारा काम विश्व की आवश्यकता के लिए हो रहा है। लेकिन मैंने जो तीनों बातें कहीं, वे अगर पूरी हो जाती हैं, तो सारे विश्व का आकर्षण होगा। अतः कम-से-कम हम अखिल भारत के दृष्टि से देखें और छोटे-छोटे झगड़े अपने दिलों से निकाल दें। चाहे वे हमारे दिमाग में रहें, लेकिन दिल में न रहें। यही हम भगवान से प्रार्थना करते हैं।

पंजाब-प्रवेश के समय प्रथम प्रार्थना-प्रवचन

लुहारू (पंजाब) १-४-'५९

# सेवा की विनम्र भावना लेकर ही मैंने पंजाब में प्रवेश किया है

आज आठ साल की पद-यात्रा के बाद मैं आपके सूबे में जो कि भारत का शिर है, आया हूँ। मेरी आन्तरिक भावनाएँ भी जो यहाँ भजन गाया गया, उसमें पूरी तरह से प्रकट हुई:

ठाकुर तुम शरणा मैं आया, ठाकुर तुम शरणा मैं आया।
उतर गया मेरे मन का संशय, जब से दर्शन पाया।'

मैं यहाँ उपदेशक बनकर नहीं आया, सेवक बनकर आया हूँ। मुझे विश्वास है कि आप मेरी सेवा स्वीकार करेंगे। नेता मैं हूँ नहीं, न होने की आशा है और न बनना ही चाहता हूँ। सेवक बना रहना ही मुझे पसन्द है। आप लोग जानते हैं कि मेरा काम सदैव मित्रता का रहा है। उससे कम-ज्यादा मेरा उपयोग नहीं हो सकता। मेरे पास दोस्ती के सिवाय ऐसी कोई शक्ति नहीं है, जिससे मैं आपके ऊपर असर डाल सकूँ। अभी अजमेर-सम्मेलन में हजारों लोग एकत्र हुए थे। उसके बाद लोगों ने मुझे पूछा कि उस सम्मेलन का क्या नतीजा निकला, तो मैंने कहा कि उससे मेरी शक्ति बढ़ी है। आप लोगों के दर्शन और प्रेम से मेरी शक्ति बढ़ती है।

चालीस गाँव में देशभर के रचनात्मक कार्यकर्ता इकट्ठे हुए थे। उस समय मैंने जाहिर किया था कि अब मैं धीरे-धीरे उत्तर की ओर जा रहा हूँ। शास्त्रों में लिखा है कि 'उत्तरेण पथा गन्तव्यम्' जीवन के अन्तिम समय में उत्तर दिशा में जाना चाहिए। मेरी अब वृद्धावस्था है। मैं नहीं जानता कि अब जिन्दगी के कितने दिन बचे हैं! भगवान कब बुला लेगा? भगवान जब भी बुलाये, मैं जाने के लिए तैयार हूँ। मैं मानता हूँ कि जहाँ भी मेरी हड्डियाँ गिरेंगी, वही मेरे लिए सबसे पाक और पवित्र जमीन होगी। ईश्वर यदि मेरी सेवा चाहे, तो मैं उसके लिए भी तैयार हूँ, फिर मैं नहीं कहूँगा कि अभी मेरा भूदान का काम बाकी है। इसलिए थोड़ी मोहलत दी जाय।

### मेरी सेवा सबको मंजूर हो

उत्तर में काफी मसले हैं। पाकिस्तान का मसला एक माने में तो खतम हो गया, परन्तु दूसरे माने में सदा के लिए कायम हो गया है। पंजाब और कश्मीर में भी काफी मसले हैं। अगर यहाँ के लोग चाहें, तो मैं उनकी सेवा करने के लिए तैयार हूँ। आप मेरी सेवा मंजूर करें। मैंने हिन्दू, मुस्लिम, जैन, बौद्ध, पारसी, सिख, ईसाई आदि सभी धर्मों का अत्यन्त प्रेम से अध्ययन किया है। मुझे खुशी है कि सभी धर्मोंवाले भी मुझे अपना ही समझते हैं।

केरल में क्रिश्चियन धर्म के चार पंथ हैं। जब मैं वहाँ गया, तब वहाँ के चारों चर्चों ने मेरे आगमन पर एक पत्रक निकाला कि love thy neighbour अपने पड़ोसी पर प्यार करो। यह ईसामसीह का संदेश है। बाबा इसी संदेश को फैलाने का काम कर रहा है। इसलिए इसको पूरी मदद मिलनी चाहिए।

उत्तर-प्रदेश में मुझे बड़ी बड़ी जमीन का दान देनेवाले मुसलमान थे। उन्होंने भी कहा कि जमीन का मालिक होना पैगम्बर के खिलाफ है। इसलिए जमीन की मालकियत के खिलाफ आवाज उठानेवाला बाबा पैगम्बर का पैगाम लेकर प्रचार कर रहा है।

अभी अजमेर-सम्मेलन में मास्टर तारासिंह आये थे। उन्होंने वहाँ भाषण करते हुए कहा था कि बाबा का संदेश वही संदेश है, जो हमारे गुरुओं का संदेश है। हमारे गुरुओं ने कहा था कि बाँटकर खाओ और विनोबा भी यही आदेश सुना रहा है।

सारनाथ में भगवान बुद्ध ने अपने शिष्यों को प्रथम उपदेश दिया था। वहीं हमें बौद्ध भिक्षुओं ने कहा कि बाबा बुद्ध के रास्ते पर चल रहा है। धर्म-चक्र-प्रवर्तन का काम बुद्ध ने किया था। उसी काम को बाबा आगे चला रहा है। कहने का आशय यह है कि मैं सबका सेवक हूँ। मुझे विश्वास है कि पंजाब भी मेरी सेवा कबूल करेगा।

पंजाब में वेदों का उद्गम हुआ, उपनिषद् गाये गये और

गीता भी सुनाई गयी। गुरुओं की वाणी भी यहाँ प्रकट हुई है। ऐसे प्रदेश में मेरी सेवाएँ नामंजूर होने का कोई कारण नहीं हो सकता। वे तो मंजूर होंगी ही। क्योंकि मैंने वेदों का अध्ययन किया। उपनिषदों का बन्दा हूँ मैं। गीता का जीवन जीने की कोशिश करता हूँ। साथ ही सन्तों का अनुयायी शिष्य भी हूँ। उन सबका वरदहस्त मेरे सिर पर है। मैं एक ही बात की आकांक्षा लेकर आपके यहाँ आया हूँ। वह यह कि आप सबके दिल एक हों। दिमाग अलग-अलग रहें, तो कोइ हर्ज नहीं। अलग-अलग दिमागों का होना जरूरी भी है। क्योंकि उससे अनेक प्रकार के आविष्कार होने में मदद मिलती है और सत्य का सही दर्शन होता है।

## मानव ही मेरे देवता

'ठाकुर तुम शरणा मैं आया'। आप मेरे ठाकुर हैं। मन्दिर में ठाकुर की प्रतिमा को मैं जिस दृष्टि से देखता हूँ, उसी दृष्टि से मानव की मूर्ति को देखता हूँ। मानव की मूर्ति में जो नूर है, रोशनी है, प्रकाश है, वह उसी हस्ती का है जिससे सारी दुनिया रौशन है। इसलिए मैं आपकी सेवा में उपस्थित हूँ। आप जितनी भी सेवा लेना चाहें, उतनी मुझसे ले सकते हैं। मेरा उपयोग करना आपके हाथों में है। मैं उसके लिए सूर्य नारायण की मिसाल देता हूँ। सूर्य भगवान आपके दरवाजे पर आकर खड़ा हो जाता है। आप दरवाजा खोलेंगे, और उसे भीतर आने की इजाजत देंगे, तभी वह अन्दर प्रवेश करेगा। दरवाजा खोलना या बन्द करना आपके हाथों में है। आपको सोने का अधिकार भी है। इसलिए आप चाहें, तो उठ सकते हैं, आधा दरवाजा खोल सकते हैं और पूरा दरवाजा भी खोल सकते हैं। आप जैसा भी चाहेंगे, वह उसी रूप में आप की सेवा करने को हाजिर रहेगा। सेवक का भी वही हाल है। वह तो आपके दरवाजे पर हाजिर रहेगा। जितनी सेवा आप प्राप्त करना चाहेंगे, उतने में ही वह सन्तुष्ट रहेगा।

## निर्भय और निर्वैर बनें

आज एक भाई से बातें हो रही थीं। वे कह रहे थे कि ग्रामदान की बात सुनकर डर लगता है। इस पर मैंने कहा कि ग्रामदान का विचार सुनकर किसी को डर पैदा होता हो, तो हमें ग्रामदान नहीं चाहिए। ग्रामदान का विचार सुनकर तो आपको निर्भयता महसूस होनी चाहिए। सिखों के दो बड़े शानदार शब्द हैं—निर्भय और निर्वैर। मैं चाहता हूँ कि हिन्दुस्तान निर्भय और निर्वैर बने। जो निर्वैर नहीं बनता, वह निर्भय भी नहीं बनता है। शेर बहादुर होता है, बिल्ली डरपोक, परन्तु बिल्ली के सामने जब चूहा आता है, तो वह शेर बन जाती है। उसकी मुद्रा उसके चेहरे और उसकी हर प्रवृत्ति में बहादुरी झलकने लगती है। लेकिन जैसे ही कुत्ता सामने आता है, वह भी चूहा बन जाती है। वैसे ही शेर हिरन के सामने बहादुर है। परन्तु तोप और बन्दूक के सामने तो वह भी दुम दबा के भाग जाता है। जब दूसरे को कमजोर देखते हैं, तो लोग बहादुर बनते हैं। हिरन के पास दाँत और नाखून नहीं हैं, लेकिन शेर के पास दाँत और नाखून हैं। इससे वह बड़ी बहादुरी दिखाता है। लेकिन उसके भी दाँत और नाखून से मजबूत औजार सामने आ जाय, तो वह कमजोर पड़ जाता है। तब आज के औजारों की क्या कीमत रह गयी? सच्चा बहादुर तो वह है, जो निर्भय होता है, निर्वैर हुए बिना निर्भय नहीं हो सकता।

संस्कृत में एक शब्द है—सिंहावलोकन। सिंह चार कदम आगे जाता है और वह मुड़ मुड़कर पीछे देखता है। वह सब से वैर रखता है। इसलिए उसे भी हमेशा आक्रमण का खतरा महसूस होता है। इसलिए पीछे देखता रहता है। निर्भय पुरुष को ऐसे देखने की जरूरत नहीं रहती। क्योंकि वह दाँतों और औजारों के बल पर नहीं, किन्तु आत्मशक्ति के बल पर खड़ा होता है।

पिछले महायुद्ध में २० लाख जर्मन सेना ने एक साथ दूसरे राष्ट्रों पर आक्रमण किया। छोटे-छोटे राष्ट्र खतम होने लगे। सभी लोग जर्मनों की बहादुरी के गीत गाने लगे। फिर एक दिन हमने अखबारों में पढ़ा कि आज जर्मनी के एक लाख लोगों ने आत्मसमर्पण कर दिया। दूसरे रोज ५ लाख लोगों ने समर्पण कर दिया और तीसरे रोज कुल-के-कुल लोगों ने समर्पण कर दिया। औजारों और शस्त्रास्त्रों के बल पर जो बहादुर बनता है, वह बहादुर है ही नहीं। जब सामनेवाले के पास हमसे ज्यादा शक्तिशाली औजार आ जाते हैं, तो हम शरण चले जाते हैं। इसमें कौन सी बहादुरी है? पास में तलवार है, इसलिए मैं बहादुर हूँ और तलवार छीन ली जाती है, तो थर-थर काँपने लगता हूँ। इसका मतलब ही यह हुआ कि औजारों में बहादुरी नहीं, डरपोकपन है।

वाल्मीकि का किस्सा मशहूर है। वह पहले शिकारी था। मनुष्यों को लूट-मारकर अपना गुजारा करता था। एक दिन उसके सामने नारद आया। वाल्मीकि तलवार लेकर उसी पर आक्रमण करने को बढ़ा। नारद ने उसे उस स्थिति में आते हुए देखकर वीणा पर गाना शुरू कर दिया। वाल्मीकि उसे देखकर आश्चर्यचकित रह गये। फिर भी वह हिम्मत करके मारने के लिए आगे बढ़ा। पास में आया देखकर नारद हँस पड़ा। इस पर उसे और भी विचित्र लगा। सोचने लगा यह कैसा अजीब जानवर है! उसने अब तक दो ही प्रकार के लोग देखे थे, एक तो हमला होते ही भाग जानेवाले और दूसरे शरण आनेवाले। लेकिन आज वह अपने सामने तीसरे प्रकार का शख्स देख रहा था। उसे नारद में कुछ वैशिष्ट्य दिखाई पड़ा। उसे इस तरह ताकते देखकर नारद ने पूछा—कहो क्यों आये हो? 'मैं लूटने आया हूँ। यही मेरा पेशा है'। वाल्मीकि ने जवाब दिया। नारद ने पूछा 'क्या तुम अपनी पत्नि से पूछकर आये हो? क्या वह भी तुम्हारे इस पाप में शामिल है?' वाल्मीकि ने कहा—क्यों नहीं? नारद ने कहा—जाओ, एक बार पूछ आओ। उसकी पत्नि ने उससे कहा—"तुम्हारे पापोंमें मेरा हिस्सा क्यों रहेगा? हाँ, तुम चोरी का माल लाओगे, तो मैं वैसी ही रसोई बनाऊँगी। कमाकर लाओगे, तो वैसी बना दूँगी। तुम्हारे पापों से मेरा क्या सम्बन्ध।" वाल्मीकि समझ गया।

## शस्त्र-शक्ति झूठी है

नारद बहादुर है। जिसके मन में वैर है, वह असल में बहादुर नहीं है। जहाँ वैर रहेगा, वहाँ भय रहेगा। जहाँ भय है, वहाँ संकोच रहेगा। संकोच और भय से ऊपर उठने के लिए शस्त्रास्त्रों से भी ऊपर उठना होगा। इन दिनों ऐसे ही शस्त्रास्त्र निर्माण हो रहे हैं। जो ऊपर से गिरते हैं, तो नीचे मनुष्यों के साथ-साथ गाय, बैल, घोड़े आदि सभी खतम होते हैं। सिखों के हाथ में भी कृपाण होता है। लेकिन कृपाण तो वह रख सकेगा, जो निर्भय होगा। जिसके अन्दर में निर्भयता हो, वही सिख है। निर्भयता की कीमत बहुत ज्यादा है।

मैं लोगों के सामने अपने विचार रखता हूँ। लोग सुनते हैं,

तब भी ठीक है, नहीं सुनते हैं, तब भी ठीक है। अभी मैं कुरान में पढ़ रहा था—मुहम्मद को क्रोध आता है। वह कहता है—कोई मेरी बात सुनता ही नहीं। तो अल्लाह उसे कहते हैं—"क्या तूने दुनिया बनाई है? नहीं, तो तू बेचैन क्यों होता है? तेरा काम लोगों तक सन्देश पहुँचा देने का है। इससे ज्यादा तेरी जिम्मेवारी नहीं है। इसलिए तुझे नम्र बनना चाहिए।' जहाँ पैगम्बर की यह बात है, वहाँ मैं कौन हूँ। मेरी कौन सी हस्ती है। मैं नाचीज हूँ। फिर भी परमेश्वर का बन्दा हूँ।

मुझे खुशी है कि आज यहाँ इस प्रान्त के सब पक्षों के लोग उपस्थित हैं। आप सबका आशीर्वाद और सहानुभूति मुझे है, इसकी मुझे खुशी है। भूदान, ग्रामदान आदि काम मेरा काम नहीं है कि जिसमें आपको सहयोग देना हो। यदि आप इसे मेरा काम समझते हैं, और अपने आपको सहयोग देनेवाला मानते हैं, तो आप गलती पर हैं। यह काम अगर आपको भला मालूम हो, तो इसे आप उठाइये और मेरे से जितना सहयोग लेना चाहें, लीजिये। वह देने के लिए मैं तैयार हूँ। इस प्रान्त में मैं पचास दिन की यात्रा करनेवाला हूँ। अगर यहाँ ज्यादा काम होता है, तो मैं और ज्यादा दिन भी रुक सकता हूँ। मेरे पीछे कोई टाइम टेबल नहीं लगा है।

### मैं सदा प्रस्तुत हूँ।

न मैं किसी पक्ष का सदस्य हूँ और न किसी रचनात्मक संस्था का। मेरे इर्द-गिर्द किन्ही खास लोगों का वर्तुल भी नहीं है। इसलिए कोई भी आदमी मेरे पास आ सकता है और बात कर सकता है। मैं बिलकुल मुक्त पुरुष हूँ। लाला अचिन्त-राम सहज परिचय में आये, इसलिए वे मेरे साथ हैं। लेकिन वे स्वयं चिंतामुक्त हैं, इसलिए उनको भी मेरी चिन्ता नहीं करनी चाहिए। जब गांधीजी से मैं मिला, तब से ही मेरी यह निश्चित धारणा बन गयी कि यदि सत्य की खोज करनी है, तो मनुष्य को अपने सिर पर कोई भी लेबल नहीं लगाना चाहिए। व्यक्तिगत सत्याग्रह के समय जब मैं गिरफ्तार हुआ और वापस जेल से छूट आया, तो मैंने बापू से भी कह दिया कि अब मैं किसी पक्ष या संस्था का सदस्य नहीं रहूँगा। सिर्फ इन्सान बन कर रहूँगा। बापू ने कहा—ठीक है। तबसे आज तक मैं मुक्त हूँ। और अकेला एक व्यक्ति के नाते घूम रहा हूँ। बापू ने इधर सत्या-ग्रह-आंदोलन शुरू किया।, तो मुझे व्यक्तिगत सत्याग्रही के तौर पर जाहिर किया। तब से आज तक मेरी वही हैसियत है। मैं अकेला हूँ। मेरा दूरवाले से उतना ही ताल्लुक है, जितना कि नजदीकवाले से। यह प्रेम का ताल्लुक है। इसलिए मैं कहना चाहता हूँ कि कोई भी बिना किसी रुकावट के मेरे पास आ सकता है। मुझसे बातचीत कर सकता है और मेरी सेवाएँ ले सकता है। सेवा की विनम्र भावना लेकर ही मैंने पंजाब में प्रवेश किया है।

◆◆◆

सुफला-विष्णु और मीरा-अरुण के विवाहोत्तर प्रसंग पर प्रदत्त आशीर्वाद

हटुंडी (राज०) २६-२-'५९

# शिष्टधर्म का मार्ग : गृहस्थाश्रम

ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यस्त ये चार आश्रम हैं। आश्रम एक वृत्ति है। अपने यहाँ धर्मशास्त्रों में ऐसा उल्लेख है। मनुष्य की किसी-न-किसी एक आश्रम के प्रति पक्की निष्ठा होनी चाहिए। अक्सर होता यह है कि परिस्थितिवश मनुष्य एक आश्रम में से निकल जाता है, पर दूसरे आश्रम में पहुँचता नहीं। इस बीच के संक्रमण-काल में कई वर्ष बीत जाते हैं। लेकिन ऐसा नहीं होना चाहिए। मनुष्य का कुल जीवन योजनापूर्वक चलना चाहिए। भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में जाते समय लाचार होकर न जाय, परन्तु विचारपूर्वक जाय। अगर यह बात ध्यान में आ जाय, तो इस विज्ञानयुग में चार आश्रमों की कल्पना बहुत ही कल्याणकारक सिद्ध होगी।

इन दिनों 'कुटुम्ब-योजना' नाम की एक योजना चल रही है। पर आश्रम योजना के सम्यक् रूप से अमल में लाया जाय, तो वैसी कृत्रिम योजना की कोई आवश्यकता नहीं रह जायगी। मनुष्य धर्म-दीक्षित होकर हरएक आश्रम के नियम योजनापूर्वक पालन करेगा, तो आज जो समस्याएँ उत्पन्न होती हैं, वे नहीं होंगी। मैं चाहता हूँ कि तटस्थ बुद्धि से आश्रम-वृत्ति में रहने की प्रेरणा उन लोगों को, जिनका कि आज विवाह सम्पन्न हुआ है, हो, तो उनका कल्याण होगा और समाज में भी अच्छी मिसाल पेश होगी।

गृहस्थाश्रम के सुव्यवस्थित होने से उसमें सभी आश्रमों का पालन हो जाता है। मैं स्थूल अर्थ में नहीं कह रहा हूँ। सूक्ष्म अर्थ में उसका पालन होना चाहिए। गृहस्थ धर्म एक पूर्ण धर्म है। उसमें शेष तीनों धर्म एकत्र किये जा सकते हैं। गीता में जो अना-सक्त और निष्काम कर्मयोग की चर्चा है, वह योग गृहस्थाश्रम में पूर्ण हो सकता है। उस दृष्टि से ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ तथा सन्यास-आश्रम अपूर्ण भी कहे जा सकते हैं। लेकिन हम उन्हें अपूर्ण न कहें,' विशिष्ट कहें। वे तीनों आश्रम विशिष्ट धर्म हैं और यह गृहस्थाश्रम है—शिष्टधर्म! शिष्टाचार!! गृहस्थाश्रम में बाकी तीनों आश्रमों के धर्म लागू हो सकते हैं, इसीलिए छान्दोग्योपनिषद् का उपसंहार गृहस्थाश्रम में किया गया है। उसमें ब्रह्मविद्या की सम्पूर्ण जानकारी देने के बाद गृहस्थाश्रम में ही उसकी समाप्ति की की गयी है।

तुम सब लोग भूदान में काम कर रहे हो। मुझे उम्मीद है कि तुम्हारे जीवन में प्रेम, सेवा तथा संयमादि गुण अभिव्यक्त होंगे और तुम लोग सुखी होगे।

◆◆◆

## अनुक्रम


१. बिना सहयोगी जीवन के समाज-रचना...
बीकानेर २६ सितम्बर '५८ पृष्ठ ३२१
२. आन्दोलन के तीन आकर्षण...
सूरजगढ़ ३१ मार्च '५९ ,, ३२४
३. सेवा की विनम्र भावना लेकर ही...
लुहारु १ अप्रैल '५९ ,, ३२६
४. शिष्टधर्म का मार्ग : गृहस्थाश्रम
हटुंडी २६ फरवरी '५८ ,, ३२८



श्रीकृष्णदत्त भट्ट, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ द्वारा भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में सम्पादित, मुद्रित और प्रकाशित।
पता : गोलघर, वाराणसी (उ० प्र०) फोन : १३९१ तार : 'सर्व-सेवा' वाराणसी।